प्रकाशक
श्री मां मन्दिर,
मंडी धनौरा, मुरादाबाद

प्रथमवार सन् १९५५ ई०

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
सुमेर प्रिंटिंग प्रेस,
सोजती द्वार, जोधपुर

अपनी और मीरा की बाते



भगवान श्रीकृष्ण जी की जन्म भूमि मथुरा में, होली दरवाजे के पास श्री 'कंसनिकन्दनजी' का एक मंदिर है, मैं उन दिनों उसी मन्दिर में ठहरा हुआ था। कठिन परिस्थितियों में, जीवन संग्राम से ऊबा हुआ और था महा दुःखी। आज की नहीं है यह है कई वर्ष की पुरानी बात।

एक दिन अनायास ही अपने मन को धीरज देने के लिए अपने ही अन्तर से यह उद्‌गार निकल ही तो पड़े।

देख दुख सिन्धु को, अधीर हो 'न मेरे मन,
जग में हितू न जो, तुम्हारा चला आयेगा।
किन्तु वही एक है, अनेक जिसके स्वरूप,
तूने यदि 'विकल', पुकारा चला आयेगा॥
सृष्टि से हटा के दृष्टि, उसपै लगायेगा तो,
अनायास किसी का, सहारा चला आयेगा।
तेरा भगवान ही! बचाना चाहता है तब,
तेरी ओर आप ही, किनारा चला आयेगा॥

बस उसी दिन से नित्यप्रति कुछ न कुछ लिखता ही रहा। 'वृजयात्रा' करता हुआ वृन्दावन पहुँचा। मीरा का मन्दिर देखा! हृदय गद्‌गद् हो गया और भर आये आँखों में आंसूँ! जो कुछ लिखा था मीरा को अर्पण कर ही दिया। और शुभ संकल्प किया कि १००१ मनहरण छन्द में 'विकल मीरा' के नाम से भगवती मीरा का सम्पूर्ण जीवन चरित्र लिखूँगा। कुछ ही दिनों में बहुत कुछ लिख भी लिया।

मैं सत्य कहता हूं कि जब से मैंने 'विकल मीरा' को लिखना आरम्भ किया है तब से मैं अज्ञातवासी के रूप में समस्त भारतवर्ष में घूमता ही रहा, एक जगह कहीं भी न टिक सका। मान, अपमान, लोक लाज, सांसारिक व्यवहार अपनी जन्म भूमि ही क्या ?। समस्त परिवार, इष्टमित्र, सगे सम्बन्धियों का त्याग, पिता का स्वर्गवास। शारीरिक पीड़ा, मानसिक वेदना, झूठे कलंक, यमयातनाएँ क्या नहीं सहा है! और क्या नहीं सह रहा हूं आज भी।

परमपिता परमात्मा किसी भी व्यक्ति पर कभी कोई आपत्ति नहीं डालता हमारी की हुई भूलें ही! आपत्ति का रूप धारण कर लेती हैं। रही उपदेश की बात सो हमेशा

दूसरों ही को देने के लिए हैं। जिस पर पड़ती है वही जानता है। आपद् काल में बड़े २ ज्ञानियों का ज्ञान, ध्यानियों का ध्यान, धनवानों का धन, बलवानों का बल, और चमत्कारियों का चमत्कार, 'ताक़' ही में रखा रह जाता है। भूल जाते हैं चौकड़ा और छूट जाते हैं छक्के। धक्के खाते खाते घुटने टेक देते हैं बड़े बड़े रुस्तम। कितने ही गुणों से पूर्ण व्यक्ति में भी आपत्ति के समय दूसरों को उसकी हर बात में अवगुण ही दिखाई देने लगते हैं। सहायता की बात तो दूर रही सहानुभूति का स्थान भी उपहास ग्रहण कर लेता है।

किन्तु संघर्षमय जीवन ही जीवन है, कितनी ही बार आग में तपने के पश्चात् सोना कुन्दन बनता है। अनेकों ठोकरें तथा छैनी हथौड़ों की मार खाने के पश्चात् ही पत्थर का टुकड़ा ठाकुर बनता है ! तभी करती है दुनिया उसकी पूजा। क्योंकि विपत्ति काल में मनुष्य को जो शिक्षा मिलती है उसे न कोई उपदेशक दे सकता है और कोई विश्वविद्यालय।

फिर भी एक ही धारणा मुझे जीवित रखे हुए है ! मैं जीवित हूँ और हर एक परिस्थिति में जीवित ही रहूँगा। क्योंकि—शुभकर्म का फल सदैव शुभ है। जो शुभ है वही

विकल मीरा

शिव, जो शिव है वही सुन्दर, जो सुन्दर है वही सत्य, और जो सत्य है वही शुभ है। जैसा उसको अच्छा लगता है वैसा मुझसे करा रहा है, और मै कर रहा हूँ।

कुछ सज्जनों ने कहा कि-विकलजी ! कवि के ऊपर उसकी कविता का प्रभाव अवश्य पड़ा करता है। आपने 'विकल मीरा' काव्य लिखा है तो मीरा के दुखद जीवन ही ने आपको इस परिस्थिति मे डाल दिया है। यदि यह सत्य है तो फिर, दुख की बात ही क्या केवल मगलमय के दर्शन होने ही की तो देर है।

कुछ ने कहा—*जाको प्रभु दारुण दुख देई।*
ताकी मति पहिले हर लेई॥

सत्य है ! इसम सन्देह करने के लिये लेश मात्र भी स्थान नहीं है। किन्तु ऐसा भी तो हो सकता है ! कि–प्रभु किसी को अनन्त सुख देने के लिये उसकी दुर्मति को दूर करके शुभ मति प्रदान कर दे। भविष्य निर्णय करेगा खैर !

पिछले दिनों यह इच्छा हुई कि मीरा जिस मंदिर में नित्य प्रति अपने मनमोहन के सामने नाचा और गाया करती थी। मेड़ता के उसी प्राचीन पवित्र मंदिर में मीरा के आराध्य

देव श्री चारभुजा के सन्मुख 'विकल मीरा' का पाठ करके अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की जाय।

मैं मेड़ता पहुंच गया, उसी मंदिर में कविता पाठ हुआ, श्रद्धांजलि अर्पित की। जनता कहां छोड़ने वाली थी, कस्बे में कई जगह कविता पाठ होता ही रहा। प्रेमियों ने आग्रह किया कि इस पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित किया जाय।

महाराज जोधाजी ने जोधपुर बसाया और जोधाजी के पुत्र दूधाजी ने मेड़ता। दूधाजी के लिये दूध सर्वप्रिय पदार्थ था, इसी लिये इनका नाम दूधाजी पड़गया। यह परम वैष्णव और भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे।

इनके पांच पुत्र थे सब से बड़े वीरमदेव और चौथे पुत्र का नाम रत्नसिंह था। इन्हीं रत्नसिंह की इकलौती पुत्री मीरा थी। यद्यपि मीरा का अपना कोई सगा भाई नहीं था! तब भी वीरमदेव के पुत्र 'जयमाल' का असीम भ्रातृप्रेम मीरा को प्राप्त था। मीरा की माता मीरा के बाल्यकाल ही में स्वर्ग सिधार गई थी। इसी कारण दूधाजी का विशेष प्यार मीरा पर रहा। ऐसे धार्मिक दादा की संरक्षिता में पली हुई मीरा दिनरात यही उपदेश सुनती रहती थी।

भगवान् कृष्ण ही सर्वस्व हैं, इनके अतिरिक्त मत डरो संसार में और किसीसे। हाड़ मांस के इस सुन्दर शरीर से मोह मत करो, संसार में जितने भी नाते हैं वह झूठे हैं, स्वार्थी और नाशवान हैं। यही कारण था कि मीरा बाल्यकाल से ही निर्भीक थी। उसमें दृढ़ता थी तभी तो वह भगवान कृष्ण को सर्वस्व मानकर उनके चरणों में जीवन अर्पण कर चुकी थी।

मेड़ता सिटी अच्छा कस्बा है। जोधपुर से लगभग ६० मील की दूरी पर देहली को जाने वाली रेलवे लाइन पर मेड़ता रोड़ जंकशन है और यहीं से १२ मील की दूरी पर मेड़ता सिटी है। यहां पर मुगलशाही जमाने की एक विशाल मसजिद भी बनी हुई है। शहर के चारों ओर परकोटा और दरवाजे बने हुए हैं। जो आजकल बुरी दशा में है।

तालाबों में भरा हुआ बरसात का पानी ही अधिकतर पीने के काम में लाया जाता है। यहां पर कई लड़ाइयाँ हुई थीं जिनमें काम आये हुए वीरों की स्मृति में अनेक छत्रियाँ आज भी बनी हुई हैं। मेड़ता आरम्भ ही से शैव्यों का एक अपूर्व गढ़ रहा होगा ऐसा ज्ञात होता है। क्योंकि इसके आस पास जंगल में अनेकों शिव के बहुत ही विशाल

और प्राचीन मन्दिर आज भी इस बात की साक्षी दे रहे हैं। बस इसी मेड़ता में मीरा के पिता राजा रत्नसिंहजी महाराज राज्य करते थे। आजकल बाजार में थाने के पास जो प्राइमरी स्कूल है यही राज महल था। मीरा इसी में रहा करती थी। पास ही में अर्थात् महल से मिला हुआ मीरा के आराध्य देव श्री चारभुजाजी का प्राचीन मन्दिर है। मीरा इसी मन्दिर में नित्य प्रति भगवान की आराधना करती थी।

मन्दिर अच्छा बना हुआ है। प्रवेश करते ही द्वार के पास दाहिनी ओर भगवती मीरा की चौदह पन्द्रह वर्ष की अवस्था की एक संगमरमर पत्थर की प्रतिमा खड़ी है। जो बहुत ही भावपूर्ण है और एक कुशल कलाकार की कला-पूर्ण कृति का जीता जागता उदाहरण है।

मीरा की प्रतिमा से लगभग सौ गज की दूरी पर भगवान चारभुजाजी की मूर्ति है किन्तु मीरा की मूर्ति दूर होने पर भी ऐसे स्थान पर खड़ी है कि जहां से वह भली प्रकार भगवान के दर्शन कर सके। मीरा की मूर्ति के पास ही द्वार के ऊपर एक सुन्दर झरोखा बना है। इसी झरोखे में बैठी हुई मीरा हर समय भगवान के दर्शन करती रहती थी।

मन्दिर बहुत ही अच्छा है जिसकी दीवारों पर भगवान् श्री कृष्ण की गीता के श्लोक, सन्तों की वाणी, मीरा के पद आदि अनेकों धार्मिक चित्र बड़े ही अच्छे ढंग से अंकित हैं।

आरती के समय कितना आनन्द आता है और उस समय का तो कहना ही क्या! जब मीरा की मूर्ति के पास खड़ी होकर सैकड़ों नारियाँ मीरा के बनाये गीत एक साथ मधुर स्वर में गाती हैं। हृदय गद् गद् हो जाता है! और आँख हो जाती है प्रेमाश्रुओं से सराबोर।

इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि-मेड़ता के क्या स्त्री क्या पुरुष क्या बालक क्या वृद्ध सभी के हृदय में मीरा और मीरा के मोहन के प्रति असीम भक्ति है, प्रेम है, श्रद्धा है और है दृढ़ विश्वास। चौबीसों घन्टे यहां की वायु में 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' यही स्वर लहरी गूँजा करती है। धन्य है मेड़ता और धन्य हैं मेड़ता के निवासी।

श्री० शुभकरणजी कविया एस. डी. ओ. मेड़ता और श्री पारीक संस्कृत पाठशाला मेड़ता के छात्रों तथा अध्यापक वर्ग ने मेरे प्रति अपने प्रेम का जो परिचय दिया वह मीरा के मोहन की कृपा ही तो है। स्नेही 'विकल'

जिसकी मीरा थी और जो मीरा का सर्वस्व था,

उसी मीरा की गाथा । मीरा के उसी

मोहन को समर्पण

'विकल' विचित्र कला, किसने सिखाई भला,
उंगली पै जग के, नचैया को गई नचाय ।
उसके स्वरूप की, अनूप छवि देख हुई,
ऐसी अनूरूप उस, रूप में गई समाय ।
अपने को सर्वथा, अयोग्य असमर्थ जान,
इसके विषय में, हो चुका हूँ मैं तो निरुपाय ।
विश्व की समस्त भूमि ! की जो आप भूमिका हो,
ऐसी भूमिका की और, भूमिका लिखी न जाय ॥

विकल

धन्य है प्रत्येक मारवाड़ी को !

जिसे 'मीरा की मारवाड़' में जन्म लेने का गर्व है ।

प्रकाशक की ओर से !



'विकल मीरा' इस पुस्तक में भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त महारानी 'मीरा बाई' का सम्पूर्ण जीवन १००१ मनहरण छन्दों में विकलजी ने वर्णन किया है। यह पुस्तक पाच भागो मे पूरी हुई है, प्रत्येक भाग की पृष्ठ संख्या एक सौ है और मूल्य एक रुपया। विकल मीरा का प्रथम भाग आपके हाथों में है यदि आपको अच्छा लगे और आप सम्पूर्ण विकल मीरा (पांचों भाग) के ग्राहक बनना चाहते हो ! तो आज ही एक पत्र डाल कर ग्राहकों में अपना नाम लिखा लीजिये ! जिस समय जो भाग प्रकाशित होगा उसी समय आपको उसकी सूचना मिल जायगी। विकल जी की लिखी हुई सभी पुस्तकें जो हमारे यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। हर समय मिल सकती हैं। पत्र व्यवहार का पता—

व्यवस्थापक

श्री मां मन्दिर, मंडी धनौरा, मुरादाबाद उ० प्र०

(१)

गाइये प्रथम गण पति के गुणानुवाद,
गिरजा सुवन गिरजेश का दुलारा है।
मंगल करण गज, वदन रदन एक,
ऋद्धि सिद्धियों का प्राणधन प्राण प्यारा है॥
क्यों न मेरा काव्य लोक-प्रिय हो विकल मीरा,
एक मात्र बुद्धि, के निधान का सहारा है।
चारों फल दायक जो नायक सुरों का वही,
लायक विनायक, सहायक हमारा है॥

(२)

वाणी पर वाणी अविराजी रहो राजी रहो,
भव्य भावनाओं को, जगाती चली आओ माँ।
कवि मैं चतुर नहीं, काव्य दोप कीजे दूर,
छन्द मनहरण बनाती चली आओ माँ॥
करुणा प्रधान रस, मेरा फिर भी है देवि,
नवरस सरिता, बहाती चली आओ माँ।
'विकल' विकल मीरा, का मैं यशगान करूँ,
वीणा मंजु मधुर, बजाती चली आओ माँ॥

(३)

वसुदेव देवकी यशोदा, नन्द ग्वाल बाल,
गोपी गोप गऊ वच्छ, गोकुल विहारी के।
वृन्दावन नन्दगाँव, बरसाना गोवर्धन,
मथुरा महान 'बलदाऊ' हलधारी के॥
'विकल' पवित्र वृज-भूमि वृजवासियों के,
भानुजा पुनीत के, वृषभानु की दुलारी के।
श्याम के सहित श्याम, भक्तों के पद पूज,
गाऊँ मैं पुनीत गुण, मीरा महतारी के॥

(४)

धन्य धन्य भारत, वसुन्धरा की वीर भूमि,
आई जहां दिव्य ज्योति, विश्व की विभूतनी।
धन्य पिता जिसने खिलाई, निज गोद मीरा,
धन्य उस मात को जो, मीरा की प्रसूतनी॥
क्यों न इस तीर्थ की, पुनीत रज शीश धरूँ,
खेली जिस धूल में 'विकल' अवधूतनी।
धन्य जोधपुर ! धन्य 'मेड़ता' पवित्र भूमि,
धन्य राजपूत ! धन्य धन्य राजपूतनी॥

(५)

मेड़ता के ! राजा रत्नसिंह की अनूप सुता,
रखते प्रसन्न सभी, विविध प्रकार से।
गोद में समोद कभी, पलने में झूल रही,
वंचित वही थी उस, बालिका के भार से॥
सर्व सुख साधन, विलोक अपने ही आप,
क्यों नहीं दुलारता, दुलारती दुलार से।
भोली भाली हंसती, बजाती रही ताली आली,
पाली गई 'विकल' मराली बड़े प्यार से॥

(६)

घुटनों के बल चली, खड़ी हुई दौड़ पड़ी,
धीरे धीरे जीवन की, सीढ़ी चढ़ने लगी।
सरल स्वभाव मन--मोह लेता भोला पन,
भोली भोली और सुघराई कढ़ने लगी॥
मीठी मीठी तुतलाती हुई ! बोलियों में नित्य,
माँ के साथ 'निज मातृ-भाषा' पढ़ने लगी।
बढ़ना अभीष्ट ही था, दिन प्रतिदिन मीरा,
चन्द्रमा की कला के, समान बढ़ने लगी॥

(७)

एक दिन आया राज-मन्दिर में सन्त एक,
सुन्दर सी प्रतिमा, लिये था घनश्याम की।
देख उसे अपने को, भूल गई अपलक,
देख रही 'विकल' सुछवि छविधाम की ॥
बोल उठी मैया मैया, लूँगी मैं खिलौना यहीं,
खेलने को और कोई चीज नहीं काम की।
ठानी बाल हट मीरा, भूमि पर लोट गई,
एक भी न मानी कितनी ही ! रोक थाम की ॥

(८)

साधू बोला नहीं मानती तो ले खिलौना यही,
किन्तु एक बात बेटी, नहीं भूल जाना तू।
देख यही ! तेरे 'मन मोहन' रसीले श्याम,
जैसे भी हो जिस भांति प्रेम से रिझाना तू ॥
'विकल' भले ही चाहे, दुख हो असीम सुख,
मंगल करण के, सदैव गुण गाना तू।
जीवन के धन यही ! जीवन के साथी मीरा,
छोड़ना न साथ, साथ इनका निभाना तू ॥

(९)

बस उसी दिन से, प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा,
मोहन को ! मीरा कभी, दूर न हटाती थी ।
इतनी थी भोली भाली, क्षण ही में भूल जाती,
कितनी ही बार भोग, श्याम को लगाती थी ।।
मानमानी ! जब चाहे, आरती उतारा करै,
खेलती थी खेल कभी, नाचती थी गाती थी ।
'विकल' बनाती मीरा, बन्ना मनमोहन को,
नवल नवेली आप, बन्नी बन जाती थी ।।

(१०)

इसी भाँति बाल क्रीड़ा, करती समोद रही,
बीत गया खेल खेल ही में, भोला बालपन ।
चौंक चौंक चंचल, चकित चितै चारु चित्र,
अपने को आप ही ! लुभाने लगी चितवन ।।
आई तरुणाई की ! बयार, घिर आये भव्य,
कजरारी अखियों में, कजरारे श्याम घन ।
बज उठी ! आप हृदय वीणा, अनायास तब,
नाच उठा मीरा का, न जाने क्यों 'विकल' मन ।।

(११)

कुछ ही दिनों के वाद, मीरा मातृहीन हुई,
दादा ने संभाला उस, वालिका का भार था ।
सरल स्वभाव शुभ, कृष्ण के अनन्य भक्त,
शुद्ध सत्य जीवन, विशुद्ध व्यवहार था ॥
अपकार की तो वात, सोचनी 'विकल' वृथा,
उनका सदैव ! ध्येय, पर उपकार था ।
ऐसे भक्त संत की, संरक्षिता में मीरा पली,
मोहन से मीरा को, तभी तो अति प्यार था ॥

(१२)

कठिनाई सामने थी, दूर करने के लिए,
सोचते थे 'विकल' सरल कोई हो ! उपाय ।
आँख ललचाती शुभ, दृश्य देखने के हित,
वही घड़ी क्यों न ! भगवान, शीघ्र दिखलाय ॥
ध्यान रख वंश मान मर्याद, खोज करें,
भेजे गये सभी ओर, विप्र खूब ! समझाय ।
चिन्ता अब एक यही, रहती थी दिन रात,
योग्य वर मिले और, मीरा परणाई जाय ॥

(१३)

'विकल' मेवाड़ पति, राणा सांगा का सुपुत्र,
भोजराज स्वस्थ, गुणवान रूपवान था।
फ़ैला यश जग में, सिसौदिया सुवंश पर,
राजपूत जाति को, सदैव अभिमान था॥
किसी भी प्रकार से न, कुछ भी कमी की बात,
अपने ही आप ! अपनी ही आप शान था।
सब भांति सब को, उचित यही 'वर' लगा,
उसके समान ! कौन, दूसरा महान था॥

(१४)

आई धूम-धाम से, 'विकल' दिव्य दर्शनीय,
रखनी ही पड़ती है, बात लोक लाज की।
साँगा के सुपुत्र की, बरात आई धन्य भाग्य,
क्यों न अगवानी करें, ऐसे सिरताज की॥
जैसी जिस विध होती, वैसी उस विध हुई,
पूरी करी गईं सब, रीतियाँ समाज की।
एक दूसरे के हुए सेने, एक अनजान दोनों,
राणा भोज मीरा के औ, मीरा भोजराज की॥

(१५)

बीत गया सकुशल, सब ही ! विवाह कार्य,
बेटी ! मीरा जाने लगी, आज सुसराल को ।
रोती कौली भर मिली, दादा से ! पिता से कभी,
कौन ? चुप कर पाया, 'विकल' विहाल को ॥
सभी ओर जिसके 'दहेज' की मची थी धूम,
देखा नहीं उसने ! असंख्य धन माल को ।
तुलसी के बिरवे को, रख पालकी में बैठी,
छाती से लगाये थी, अनोखे नन्दलाल को ॥

(१६)

आगई चित्तौड़ में, बरात तब ! स्वागत को,
छोड़ी गईं तोप ! कितनी ही बड़ी शान से ।
सभी ओर मची थी, अजब धूम धाम खूब,
गूँजा रनवास, नारियों के कल गान से ॥
मन में असीम सुख, पाती चली ! सास नन्द,
आरती उतार पट, खोला अभिमान से ।
हाथ का सहारा दिया, 'विकल' उतारा गया,
पालकी से मीरा को, बड़े ही सन्मान से ॥

(१७)

मीरा बनी हुई थी, खिलौना सब ही के लिये,
प्यार से दुलार से, पुकारें ! मीरा मीरा नाम ।
सब के प्रसन्न मन, 'विकल' समोद बीते,
कितने ही दिन ! कितनी ही रात, अभिराम ॥
एक दिन बोली सास, बहू 'कुलदेवी' पूजो,
मीरा बोली ! मेरा देवता तो, एक घनश्याम ।
और किसी देवी देवता को ! नहीं पूजती हूँ,
जानती न मानती, न मेरा है किसीसे काम ॥

(१८)

आगे होने वाली, महारानी के विचार ऐसे,
मीरा के विरुद्ध क्रुद्ध, हुआ सभी रनवास ।
सीधे मुख बोले नहीं, बिन बोले बीने नहीं,
दूर ही से बात करें, कोई भी न आये पास ॥
यही एक आई है ! निराली 'घनश्याम' वाली,
ताने लगीं मारने, जिठानी नन्द और सास ।
कुल की हमारे आन बान को, मिटाया हाय !
आई करने को 'कुलबोरनी' क्या ? सर्वनाश ॥

(१६)

एक दिन राणा भोज, मीरा के समीप गए,
मिलन प्रथम था, 'विकल' थी सुहाग रात।
शैया पै विराजे तब, चरणों में बैठ गई,
हाथ जोड़ बोली एक, माननी पड़ेगी बात॥
मेरा पति 'श्याम' दूसरा न कोई! रोने लगी,
जलजात के समान, लोचनों से जलजात।
कुछ भी न बोले राणा, बैठे रहे मौन किन्तु,
हो चुका था 'काम-वासनाओं' पै तुपार पात॥

(२०)

अजर, अमर, अविनाशी जो! अजन्मा है,
उसकी हूं 'विकल' वियोग की! नहीं हूँ मैं।
ऐसा वर मैंने वरा, अचल सुहाग रहे,
रीत कोई! प्रथम, प्रयोग की नहीं हूँ मैं॥
सत्य कहती हूं। उसकी ही प्रेम रागनी हूँ,
रागिनी किसी भी अन्य, रोग की नहीं हूं मैं।
जग के लिये तो! अर्द्धगिनी हूँ, राणा किन्तु,
संगनी तुम्हारे! काम-भोग की नहीं मैं॥

(२१)

जलता वियोग की न, आग में अकेला कभी,
आह भरता है न, कराह ही लगाता है।
लगन जो लगी उसी, लगन में मगन हो,
आफत हजार पड़ें, हर्ष से उठाता है॥
'विकल' न पाता कल, एक पल को भी कभी,
एक दूसरे को! दूर ही से, देख आता है।
चित में हो चाह राणा! यही है पवित्र प्रेम,
अंक लग जाने से, कलंक लग जाता है॥

(२२)

धोका है! वृथा हैं झूठे, जग के समस्त नाते,
माया में फँसाते काम, कोई भी न आता है।
खोज लिया ऐसा मैंने, जीवन का साथी श्याम,
छूटता न साथ कभी, टूटता न नाता है॥
'विकल' उसी के चरणों में, सौंप जीवन को,
नाचती हूँ! जैसा नाच, मुझको नचाता है।
आप ही बताओ राणा, दूसरा कहा से लाऊँ,
दिल एक ही है, एक ही को दिया जाता है॥

(२३)

प्रथम तो ! वज्रपात, हो ही गया उर पर,
राणा सुनते थे और, मीरा कहती रही।
उर में प्रकाश था, तभी तो मनमानी व्यथा,
दुख पाई धीरे धीरे, चोट सहती रही॥
'विकल' अभीष्ट पर ! जिसका लगा था ध्यान,
जग की असारता, उसीको दहती रही।
राग औ विराग के ! विचित्र चित्र सामने थे,
दोनों के हृदय में, ज्ञान गंगा बहती रही॥

(२४)

बोल उठे राणा ! तेरे, इष्ट के प्रति सदैव,
अपने हृदय में, भक्ति भावना भरूँगा मैं।
साधना तुम्हारी सब, भाँति हो सफल देवि,
'विकल' अनीति से, डरा हूं औ डरूँगा मैं॥
मेरा धन्य भाग्य ! रानी, ऐसी धर्मनिष्ट मिली,
जिसके प्रताप भव-सिन्धु से तरूँगा मैं।
तेरे मन के विरुद्ध, कुछ भी न होगा कभी,
जैसा तू कहेगी ! मीरा, वैसा ही करूँगा मैं॥

(२५)

राणा भोज धन्य मानते ही रहे अपने को,
मीरा कल गान नित्य, उनको सुनाती थी।
उसके तो ध्यान में, वही था गिरधारी एक,
'विकल' किसीको और, ध्यान में न लाती थी॥
सन्ध्या होती बाल वृद्ध, नर नारियों की आप,
मन्दिर के चारो ओर, भीड़ लग जाती थी।
सभी झूम जाते! ऐसा, पाते थे असीम सुख,
अपने बनाये पद, मीरा जब गाती थी॥

(२६)

अपने को धन्य! मानती थी, धन्य भाग्य मेरा,
मीरा हुई! राणा के, प्रसन्न व्यवहार से।
अपनी ही साधना में, लीन रहती थी निन,
परम पवित्र मन, रहित विकार से॥
आतुर हो 'विकल' पुकारै, श्याम श्याम कभी,
श्याम को न्हवाती प्रेम, अश्रुओं की धार से।
आरती उतारै! कभी, उर में निहारे छवि,
लगन लगी थी उसी, नन्द के कुमार से॥

(२७)

'राणासांगा' जानते थे, कृष्ण की अनन्य भक्त,
मेरी पुत्र ! वधू मीरा, भावी 'महारानी' है।
मन्दिर महल में, अलग बनवाया एक,
इस ही लिये तो क्यों कि, बड़ी स्वाभीमानी है ॥
किसी भी प्रकार का न, इसको यहां हो कष्ट,
ऐसा यदि हुआ तो, हमारी बदनामी है।
दूदा जी की पत्नी छत्र-छाया में तभी तो मीरा,
ज्ञानी है ! सयानी है, उदार महादानी है ॥

(२८)

मेड़ता में ! साधु सन्त, हरि भक्त सत्संग,
सुनती सदैव रही, मीरा हरिगुण गान।
यहां लगी हुई रोक, सम्भव है पाये दुख,
यही पूरी छूट फिर, क्यों न करदूँ ! प्रदान ॥
सरल स्वभाव सत्य, भक्त शुद्ध आचरण,
भोजराज ! शिष्ट मिष्टभाषिता दया महान।
कोटि कोटि प्रभु धन्यवाद, ऐसे पुत्र और,
ऐसी पुत्र वधू ! पर, क्यों करूँ ! अभिमान ॥

(२६)

सांगा की उदारता को, भोज की सरलता को,
क्यों नहीं सराहे नित, फूली न समाती थी।
किसी भी प्रकार की नहीं थी, कोई रोक टोक,
महल में सन्तों की, जमात चली आती थी॥
धन्यवाद देती हुई, प्रभु को 'विकल' मीरा;
अहो भाग्य मानती, असीम सुख पाती थी।
करती थी सर्व भाँति, सब का उचित मान,
साधुओं के साथ बैठ, श्याम गुण गाती थी॥

(३०)

भोजन कराती दिव्य वस्त्र, बाँटती थीं नित्य,
साधुओं की भीड़ लगी, रहती थी आस पास।
रखती थी ध्यान! इस बात का सदैव मीरा,
'विकल' न जाने पाये, कभी कोई भी निराश॥
किन्तु विधना के! कुछ और ही विचार में था,
आई महा आपदा की, घड़ी आप अनायास।
राज्य परिवार पर, बिजली सी टूट पड़ी,
कर गये हाय! राणा भोजराज स्वर्गवास॥

(३१)

'भोज' की सरलता का, पड़ा था प्रभाव ऐसा,
मीरा की अधीरता का, कुछ न ठिकाना था।
उसने तो माना ! इसने भी पहिचाना उसे,
एक दूसरे ने। एक दूसरे को जाना था॥
ऐसा न हो फँस जाय, मोह ममता में कहीं.
भोज की मृत्यु का ! यही, 'विकल' बहाना था।
सत्य तो थी यह बात, विधना को सब भाँति,
कृष्ण की अनन्य भक्त, मीरा को बना था॥

(३२)

आने बुरे दिन। तब, 'विकल' सुधारे कौन,
राणा सांगा ! वीरता सहित, काम आगये।
होगई चित्तौड़ हतभागिनी, अभागिनी सी,
घोर आपदाओं के, घने ही घन छागये॥
उत्तराधिकारी महाराणा, रत्नसिंह बने,
वो भी कुछ दिन, धाक अपनी जमा गये।
भाग्य बहनोई ! एक, दूसरे का खून कर,
बून्दी को चित्तौड़ को, कलंक ही लगा गये॥

(२३)

सभी ने बनाया अब, महाराणा विक्रम को,
सर्वथा उचित ! उसही का, उत्तराधिकार ।
दासी पुत्र वनवीर ! जलता 'विकल' रहा,
कुछ भी न कर पाये, उसके बुरे विचार ॥
दिन प्रति दिन महाराणा का, सुयश फैला,
बड़ी दूरदर्शिता से, राज्य का संभाला भार ।
विक्रम सभी के लिए, बना सुखदाई किन्तु,
मीरा के लिए तो, दुखदाई दुख ही अपार ॥

(२४)

राज्य परिवार अब, सारा यही कहता था,
पुरखों की आन बान, धूल में मिलायेगी ।
ऐसी डंकनी है प्रभु, जाने क्या ? करेगी और,
पति को न छोड़ा तब, किसको न खायेगी ॥
लाख समझाये कोई, माना है ! न मानती है,
साधुओं के साथ बैठ, मूँड को मुँडायेगी ।
हाय कैसी दुखदाई, बनी है 'विकल' मीरा,
आप राँड हुई, राँड सब को बनायेगी ॥

(३३)

चोट तो अनेक ! लगती थीं, किन्तु ध्यान था न,
'विकल' हृदय पै बस, एक चोट खाती थी ।
एक अभिलाषा ही के, पीछे थी दिवानी बनी,
अन्य अभिलाषायें ! कभी न ओट पाती थी ॥
एक ही लगाये ध्यान, अपने को देखती थी,
किसी का जुबान पै, कभी न खोट लाती थी ।
चढ़ के अटा पै जब ! देखती घटा की छटा,
'लोटन कबूतरी' सी, मीरा लोट जाती थी ॥

(३४)

बरसो न बरसो ! भले ही मेरे घनश्याम,
चातकी नही हूँ ! जो कि स्वाति बिन्दु चाहिये ।
'विकल' भयंकरी ! भले ही हो, अमा की निशा,
नही हूँ चकोरी ! जो कि पूर्ण इन्दु चाहिए ॥
आप दीनबन्धु हो तो, मुझ सी न दीन अन्य,
दीन को सदैव ! बन्धु, दीन बन्धु चाहिये ।
प्यासी युग युग की है, दासी हे तुम्हारी श्याम,
मीरा को तो प्रेम का, अगाध सिन्धु चाहिये ॥

(३५)

गरज गरज ! करते हो, घन घोर शोर.
मानो रण बांकुरे, बड़े ही उत्साही हैं।
घुमर घुमर ! उठती हैं, काली काली घटा,
कुछ भी नहीं हैं ! झूठी दे रही गवाहीं हैं ॥
'विकल' वियोगनी के लिये, दुखदाई दोनों,
मानते किसी की नहीं, करैं मन चाही हैं।
जैसे घनश्याम बस ! वैसे घनश्याम तुम,
होते काले काले ! बदरा ही बद राही हैं ॥

(३६)

मन ललचाता रहा, अखियाँ तरसती थीं,
'विकल' सदैव दर्शनों को, घनश्याम के।
देख लिया आज कैसे, निठुर ! न जाने पीर,
जितने भी होते हैं, बड़े ही बड़े नाम के ॥
गरज हमारी थी तो, गरज तुम्हारी सही,
निकले दिवाने तुम, कोरी धूम धाम के
बरसे तो क्या है अरे, चातकी तो प्यासी रही,
मेरे किस काम के, न कौड़ी के छदाम के

(३६)

ऐसे ही विचारी दिन, काट लिया करती थी,
कभी रोते रोते सारी, निश वीत जाती थी।
वैठी देख ! जव चाहे, आप उड़ जाती नींद,
भाग जाती कोसों दूर, पास नहीं आती थी ॥
उर में 'विकल' जव, हूक उठती तो आप,
श्याम श्याम ही की वस, रटना लगाती थी।
वेसुध हो अपने को, ऐसी भूल जाती मीरा,
नाचती अथक कभी, हंसती थी गाती थी ॥

(४०)

विध की विचित्र गति, होनी महा वलवान,
कालचक्र का तो और भी, प्रहार हो गया।
'विकल' जरासी भूल, कैसी दुखदाई वनी,
भार रूप जीवन था, और भार हो गया ॥
कितने ही यत्न करो ! मिटता नहीं है जव,
उर में हठी के ! कुछ, भी विकार हो गया।
किसको था ज्ञात अभी, आगे होने वाला क्या है,
मीरा के लिये तो, दुख ही ! अपार हो गया ॥

(४१)

दिल्ली मे मुगल बादशाह 'अकबर' का जो,
एक बार दिव्य दरबार, था लगा हुआ।
छा रहा अपार हर्ष, सर्व सुख को विलोक,
दुख शोक आज कोसों, दूर था भगा हुआ॥
जाती जिस ओर दृष्टि, थे प्रफुल्ल मुग्ध मन,
प्रेम रस पूर्ण हर, एक उमगा हुआ।
मीरा के पुनीत गीत, गाये जा रहे थे शुभ,
राग था 'विकल' तानसेन का जगा हुआ॥

(४२)

आँखों में समाये जब, सब की त्रिलोकी नाथ,
नाच उठी आप सुषमा, त्रिलोक भर की।
देखा मधुबन में, चराते हुए गैया कभी,
कान मृदु तान पड़ी, बाँसुरी के स्वर की॥
यमुना किनारे कभी, करते किलोल देखे,
झाँकी कभी झाँकी, 'बाँके लाल' गिरधर की।
प्रेम के पुनीत चित्र, 'विकल' विलोक हुआ,
मन्त्र मुग्ध आँख भर, आईं अकबर की॥

(४३)

बोल उठा ! अकबर, हर गीत में है दर्द,
कितना कठोर हो, कलेजा क्यों न हिल जाय ।
दिल का लगाना हँसी खेल, दिल्लगी है नहीं,
किसी दिलदार से, किसी का लग दिल जाय ॥
चाहता नहीं मैं कुछ, एक बात चाहता हूं,
जैसे भी हो मेरी, आरजू का गुल खिल जाय ।
मीरा के सुकंठ से ! सुनूँ मैं कल गान और,
मीरा का मुखारविन्द, देखने को मिल जाय ॥

(४४)

मन्त्रियों के साथ बैठ, करने विचार लगा,
बोले सभी ! यह काम, कैसे कर पायेंगे ।
मान लो अगर हम, लड़ना ही ठान लें तो,
राजपूत वीर जान पर, खेल जायेंगे ॥
आन बान शान के, दिवाने मरदाने हठी,
किसी भाँति 'विकल' न सिर को झुकायेंगे ।
जीत भी गये तो फिर भी, न हो मुराद पूरी,
जीती हुई मीरा को, कहाँ से हम लायेंगे ॥

(४५)

बोला 'तानसेन' बन, सकती है एक बात,
सोची दूसरी तो, दूसरा ही रंग लायेगी।
प्रबल प्रतापी राणा, सांगा की है पुत्र वधू,
मीरा तो क्या मीरा की, हवा न मिल पायेगी॥
देश काल पात्र को, विचारा है विचारपूर्ण,
और कोई युक्ति कुछ, काम ही न आयेगी।
साधू बन जाओ तो, सुनोगे कल गान और,
मीरा भी 'विकल', देखने को मिल जायेगी॥

(४६)

साधुओं के लिये वहाँ, कोई रोक टोक नहीं,
मीरा के समीप ! हर एक, चला जाता है।
कुछ भी न कष्ट, भेद भाव नही कोई भी हो
भर पेट 'विकल', प्रसाद नित्य पाता है॥
सांध्यकाल आरती का, दृश्य देख देख कर,
हृदय हर्षाता नैन, नीर भर आता है।
गाती नाचती है जब, साधुओं के साथ मीरा,
'घनश्याम' नभ से, सुधा सी बरसाता है॥

(४७)

वाह वाह तानसेन, सोची खूब ठीक बात,
इससे न अच्छी कोई, और तरकीब है।
अपने को 'विकल' छिपाना बड़ा टेढ़ा काम,
क्योंकि वहाँ कोई भी, न अपना हबीब है ॥
भेद खुल गया गर, बच न सकेगी जान,
हर एक राजपूत, मेरा तो रकीब है।
देखना है कैसा रंग, लायगा चलो तो सही,
आखिर को कुछ तो, हमारा भी नसीब है ॥

(४८)

शीश को मुंडाय देह, गेरुआ वसन धारे,
माला डाली गले में, तिलक लगा माथ में।
उपयोगी वस्तुओं की, पोटली बगल दाब,
छोटा सा कमण्डल, उठाया सीधे हाथ में ॥
भूल गया अपने को, अपना लगाये ध्यान,
मीरा में था मीरा के 'विकल' बृजनाथ में।
हरिगुण गाता चला, फूला न समाता चला,
साधुओं की छोटी सी, जमात चली साथ में ॥

(४६)

साधुओं के साथ साथ, बादशाह अकबर,
अपने स्वरूप को, छिपाता चला जा रहा।
राजी खुशी लौट आऊँ, मेरी हो मुराद पूरी,
पीरों को फकीरों को, मनाता चला जा रहा॥
राह की अनेकं सह लेता, कठिनाइयों को,
पड़ती मुसीबतें, उठाता चला जा रहा।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे,
हरे कृष्ण कृष्ण गुण, गाता चला जा रहा॥

(५०)

हृदय में लगी हो वही, जानता लगी की आग,
चुपचाप कितनी, छिपाये हुऐ पीर था।
चाह वही एक रही, जिसकी न पाई थाह,
फिर भी दिवाना कभी, होता न अधीर था॥
जिसके इशारे पर, क्या कुछ हुआ न कभी,
आज मौन बैठा प्रेम, सरिता के तीर था।
ऐसा तकदीर की, लकीर का तमाशा देखा,
देहली का बादशाह, 'विकल' फकीर था॥

(५१)

कुछ ही दिनों के बाद, आगये चित्तौड़ गढ़,
चले गये वहीं जहाँ, साधुओं का रंग था।
होता हरि भजन, प्रसन्न सब हीं के :मन,
एक भावना थी और, एक ही प्रसंग था ॥
अकबर प्रेम को निहार, बलिहार हुआ,
'विकल' फड़क उठा, आप अंग अंग था।
इकतारा खंजरी मजीरा, चंग बाँसुरी के,
साथ साथ मीठा मीठा, बजता मृदंग था ॥

(५२)

सूर्य हुआ अस्त बजे, शंख घड़ियाल तब,
मन्दिर के द्वार पर, भीड़ हो गई अपार।
भीगी हुई पलकों से, कितने ही हरि भक्त,
'विकल' सुछवि छवि, धाम की रहे निहार ॥
कितने ही मूंदे हुये नैन, खड़े साधे मौन,
मानों दूर करते हों, आज मन के विकार।
गाती हुई आई, इकतारे को बजाती मीरा,
बोल उठे जयकार, सभी सन्त बार बार ॥

(५३)

उर से न दूर हुआ, जिनके महान तम,
देखी उन दम्भियों ने, दिव्य दीपमालिका।
जग से विरक्त हरि, चरणों में रत हुए,
जान पड़ी उनको, अबोध भोली बालिका॥
जीवन के तत्व का, महत्त्व जान पाये उन,
'विकल' विवेकियों के, लिये थी मरालिका।
मिट गया आप 'अकबर' का विकार जब,
देखी दिव्यज्योति मीरा, उज्वल उजालिका॥

(५४)

भाव भरे गीत और, विकल' सुरीला कंठ,
मृदुतान सब ही का, मन हरने लगी।
स्वार्थी हृदय जो शुष्क, नीरस कठोर महा,
उनके हृदय में प्रेम, भाव भरने लगी॥
चारों ओर घूम घूम, बावली उतावली सी,
श्याम के अनेकों रूप, ध्यान धरने लगी।
पग बाँध 'घूंघरू' बजाती हुई गाती हुई,
मोहन के आगे! मीरा, नृत्य करने लगी॥

(५६)

'विकल' विचार शून्य, हो गया विचार आप,
शक्तियाँ विचार करने की, सभी सो गईं ।
कैसी कैसी उठती जो, उर में सदैव रहीं,
आज वही ! भव्य भावनायें कहीं खो गईं ॥
तर्क नहीं लेशमात्र ! बुद्धि से परे की बात,
प्रेम की प्रवृतियाँ, मलीनता को धोगईं ।
देखा जिस ओर, अकबर ने उसीको देखा,
पल ही में एक की, अनेक मीरा हो गईं ॥

(६०)

शीश मोर मुकुट, शरीर पीत पट धारे,
काले काले केश, घुँघराले अभिराम थे ।
सुन्दर तिलक भाल, कुंडल अनूप कान,
सर्व दुख मोचन, सुलोचन ललाम थे ॥
गल वैजयन्ती माल, कैसी मद भरी चाल,
अधर से बाँसुरी लगाये, छविधाम थे ॥
'विकल' अकेली कोई, देखी नहीं मीरा कहीं,
जितनी थीं मीरा, उतने ही 'घनश्याम' थे ॥

(६१)

भक्त और भगवान ! की अपार शक्ति देख,
मीरा के पदों में आप, लोट गया अकबर ।
बार बार श्रद्धा से, झुकाता रहा निज माथ,
उर भरते ही आप, आईं दोनों आँख भर ॥
जान शुभ समय, निकाला दिव्य हार एक,
सावधान ! पोटली को, धीरे धीरे खोल कर ।
बोल उठा राधिका रमण की 'विकल' जै हो,
वृन्दावन वासी धन्य 'अविनाशी' नटवर ॥

(६२)

'विकल' विचित्र कैसी, उसकी है कारीगरी,
जिसने बनाया है, जमीन आसमान को ।
सूरज सितारे चाँद, किस के सहारे पर,
कौन जान पाया, उस महिमा महान को ॥
मैं तो एक अधम, अनाथ जीव पातकी हूँ,
देने योग्य कुछ भी न, सर्व शक्ति मान को ।
फिर भी श्रद्धा के साथ, देखो यह मीरा मेरी,
तुच्छ भेंट अर्पण है, कृष्ण भगवान को ॥

(६३)

दूर ही से हार को, निहार कर मीरा बोली.
साधुओं को साधुओं का, व्यवहार चाहिये।
तेरे पास हार है, अवश्य इसमें रहस्य,
करनी न चेष्टा, अनाधिकार चाहिये॥
चोरी करी होगी या, किसीका काटा होगा गला,
'बदकार' करना न, बदकार चाहिये।
चला जा यहाँ से ! तेरा, मुख देखना है पाप,
मेरे भगवान को ! न ऐसा 'हार' चाहिए॥

(६४)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, साधू हो अनर्थ करूँ,
गहा न गहूँगा दुष्ट, दुर्जन के साथ को।
यदि इस हार हित, काटा हो किसीका गला,
सत्य कहूं 'विकल' मैं, काटूँ निज हाथ को॥
मेरा अपमान ! करती हो, बिन अपराध,
मरजाऊँ पत्थर से, फोड़ूँ अभी माथ को।
तुझको न देता अरी, देता हूं उसीको मीरा,
यमुना का दिया हार, यमुना के नाथ को॥

(६७)

'विकल' उतार हार, लेगया पुजारी एक,
चला गया वहीं जहाँ, विक्रम का रनवास।
मुख पै हवाईयाँ उड़ाईं, अपने ही आप,
बैठ गया एक ओर, हो कर महा उदास॥
देखा जब विक्रम को, रो उठा दहाड़ मार,
बोल उठा! हार फैंक, भरता रहा उसास।
आन बान शान, स्वाभिमान कुल कीर्ति गई,
सब भाँति हो चुका है, राणा तेरा सर्वनाश॥

(६८)

अकबर बादशाह का है, देखो राणा हार,
नाम भी लिखा है, आप साफ पढ़ लीजिये।
साधू बन आया, हार मीरा को दिया है भेंट,
और क्या प्रमाण तर्क, कुछ भी न कीजिये॥
साधुओं के साथ गाती, महा दुराचारिणी है,
मौन हो भले ही आप, विष घूँट पीजिये।
सूर्यवंशी क्षत्रियों की, काट दी 'विकल' नाक,
मीरा का तो जग से, मीटा ही नाम दीजिये॥

(७१)

सारी रात नींद नहीं आई, सोचता ही रहा,
मीरा को मिटाने का, सरल कोई हो उपाय ।
सम्भव है यातनायें, पाने पर काँप उठे,
अपनी ही भूल को, 'विकल' मान पछताय ॥
किन्तु पूर्ण सहयोगियों के द्वारा कार्य करूँ,
भेद नहीं खुले उन्हें, दूँगा खूब समझाय ।
लोक प्रिय हो चुकी है, जनता की प्यारी मीरा,
ऐसा न हो राज में, अराजकता फ़ैल जाय ॥

(७२)

होते ही प्रभात राणा-विक्रम का रोष बढ़ा,
'विकल' विचारी मीरा, बंद हुई कारागार ।
जितने थे साधू सन्त, हरि भक्त भागे आप,
भूले भी न आयें ऐसी, कठिन लगाई मार ॥
यातनायें देने को, नियुक्त किये गये कुछ,
पूरी छूट जैसा चाहें, वैसा करें व्यवहार ।
दिन रात मीरा पर, होने मन माने लगे,
अत्याचारियों के द्वारा, नित्य नये अत्याचार ॥

(७३)

यातनायें देने वालों ! ही में एक ऐसा भी था,
जिसके हृदय में हो, रहा था सत्य का प्रकाश ।
बुद्धिमान चतुर, सतर्क 'नीतिवान' महा,
उसके सुलक्ष का, किसी को हो सका न भास ॥
ऊपर से इतना विरुद्ध, कि ठिकाना नहीं,
महा क्रोधी मानो अभी, कर देगा सर्वनाश ।
किन्तु थी सहानुभूति हार्दिक ! मीरा का था,
परम हितैषी एक, बूढ़ा विप्र रामदास ॥

(७४)

एक दिन मीरा ! अति ही उदास, खिन्न मन,
बैठी नत ग्रीव थी, समीप कोई भी न था ।
आया ज्वार भाटा न, संभाल सकी अपने को,
प्रेम मथनी से जब, मन सिन्धु को मथा ॥
भली बुरी जैसी भी थी, वैसी की ही वैसी लिखी,
कुछ भी छिपाई नहीं, आदि अन्त की कथा ।
राम भक्त तुलसी को, एक पत्र द्वारा लिखी,
'विकल' स्पष्ट आज, अपनी हृदय व्यथा ॥

(७५)

सिद्ध श्री 'चित्रकूट' वासी, सुख राशी सन्त,
वैसे ही गुणों से ! पूर्ण, जैसा शुभ नाम है ।
'विकल' महान कवि, त्यागी अनुरागी धन्य,
सुयश सुगंधी आज, फ़ैली धाम धाम है ॥
सिया राम सब जग जाना, और जानते क्या,
भक्तवर ! साधना, तुम्हारी अभिराम है
राम के गुलाम ! हुलसी के लाल, तुलसी के
चरणों में ! दासी मीरा, करती प्रणाम है ।

(७६)

रखते 'विकल' पर-हित का सदैव ध्यान,
पीड़ितों के सेवक ! हो राम के प्रताप हो
जग को असार जान, त्याग दिया पाया सार,
त्याग के विराग के, सुरम्य रूप आप हो
दया क्षमा जिसमें ! उदारता महान भरी,
मानवीयता की पूरी, नपी तुली माप हं
तुम हो सभी के और, विश्व में तुम्हारे सभी,
मीरा के तो सन्त सुखदाई ! माई बाप हो

(७७)

जीवन से मेरे आज, खेल ही रहा है जग,
कौन सुनता है मेरी ! विपदा सुनाऊँ क्या ।
धन्य भाग्य मिल गये, पारस के तुल्य आप,
और पत्थरों में ! सिर मार, आजमाऊं क्या ॥
कोई दिल वाला दिल, देखे तो दिखाऊं घाव,
'विकल' विचारी, वेदना के गीत गाऊं क्या ।
कितनी दुखित और, कितनी घृणित हूं मैं,
बीत रही कैसी अब, आप से छिपाऊं क्या ॥

(७८)

कायर कलंकी कोई, कामुक कपूती कहो,
बोलियों के उर बीच, सूले ही सले रहें ।
दुनिया दुरंगी मुझे, तेरी नहीं चिन्ता कुछ,
'विकल' आस्तीन में, सपूले ही पले रहे ॥
आती रहे नित याद, जिसे तुम्हारी नाथ,
करुणा निधान आप ! भूले ही भले रहे ।
चाहना नहीं है कुछ, चाहना यही है श्याम,
उर के फफोले नित्य, फूले ही फले रहें ॥

(७६)

जो भी यहाँ आता, दुख देता चला आता मुझे,
कौन सुने मेरी ! हाकता हैं आप दून की।
पूजन के हित अब, और क्या है मेरे पास,
केवल है ! शेष माल, भावना प्रसून की ॥
एक सेर पानी मिलता है, और मिलती है,
आध पाव रोटी, एक बजरी के चून की।
'विकल' न जाने कौन ! जन्म का चुकाती वैर,
दुनिया बनी है आज, प्यासी मेरे खून की ॥

(८०)

जैसी और जितनी भी, चाहे कोई देता रहे,
यातनाएँ सहने से, मुख नहीं मोड़ूँगी।
विश्व विपरीत है तो ! विश्व में न मेरा कुछ,
तृण के समान विश्व, बन्धनों को तोड़ूँगी ॥
'विकल' है मेरा एक, और दूसरा न कोई,
एक से अनेक नेह, नाते सभी जोड़ूँगी,
प्राण का नहीं है मोह, प्राण पर खेल चुकी,
प्राण छोड़ दूँगी ! प्राण प्यारे को न छोड़ूंगी ॥

(८१)

कोई मनमानी कहे, सब की सुनूंगी किन्तु,
मुझको तो वही प्रेम-रागनी अलापनी।
ऐसा न हो जग माया, बढ़ आये मेरी ओर,
कितनी है दूर वही, दूरी नित्य नापनी॥
बोली बोल बोल कर, घायल किया है उर,
सब यही! कहते हैं, मीरा महा पापनी।
देखो किसी और को निहाल क्या करेगी जब,
छोड़ा नहीं पति को भी! डस गई साँपनी॥

(८२)

जग की समस्त भक्ति, इसके हृदय में भरी,
एक मात्र! केवल यही हैं, धर्म धारिणी।
बगुला भगत सी पुकारे, नित श्याम श्याम,
भरे हुए मन में! विकार है, विकारिणी॥
यौवन तरंग में 'विकल' मदमाती फिरै,
जीवन वृथा है बनी, आप भूमि भारिणी।
लोक लाज त्याग नाचे गाये साधुओं के साथ,
भ्रष्ट हुई! पतित है, मीरा व्यभिचारिणी॥

(८३)

परम हितैषी भी क्या, होता महाघातक है,
सोचती हूँ ! समझ में, आती नहीं बात है।
किसका भरोसा, किया जाय कौन अपना है,
उर में हरी के, मारदी क्या ? भृगु लात है ॥
उसकी महान महिमा का ! भेद जाने कौन,
उसी करामाती की, अनोखी करामात है।
जल से न दूर ! जल उससे न दूर ! किन्तु,
जल में 'विकल' जलजात ! जलजात है ॥

(८४)

पत्थर के नीचे और, बालू के पहाड़ पर,
किसकी उगाई हुई, उग दूब जाती है।
दिव्य कला कुञ्ज में, कुशल मालियों के आगे,
जीवन से जीवन की, वेल ऊब जाती है ॥
जीर्ण शीर्ण विपरीत वायु, महा बोझ भरी,
प्रबल तरंगों में भी, पार खूब जाती है।
'विकल' नवीन भार हीन, सभी शक्ति युत,
तरणी किसी की तट ही पै, डूब जाती है ॥

(८७)

रवि की प्रथम ही, किरण के चला है संग,
निरख मुखार्विंद, फूला न समाता है।
पान करता है मकरन्द, मन्द मन्द गन्ध,
ताप शीत पावस, को ध्यान ही न लाता है॥
पल में कठिन से कठिन! काठ बींध कर,
'विकल' अमर छाप, अपनी लगाता है।
फिर भी कमल की! सुकोमल नली के मध्य,
तड़फ तड़फ क्यों? मलिन्द मर जाता है॥

(८८)

दिन को दिखाता नही, दीन दुखी निज मुख,
होते ही निशा के नहीं, नेक कल पाता है।
पटक पटक शीश, नोंच डालता है पर,
प्रेम का परम पाठ, विश्व को पढ़ाता है॥
आँसुओं से धोता नित, दिलकी लगी के घाव,
चन्द्रमा की चाँदनी से मन बहलाता है।
किसके सहारे तन-जारे हा! विचारे चिन,
'विकल' अंगारे क्यों? चकोर चुग जाता है॥

(८९)

बन में न बाग में न, सरित तड़ाग तीर,
नभ में निहारती हूं, नहीं दीख पाती हो।
प्रभु जानता है या कि, तुम जानती हो देवि,
कौन साधना में कहा! जीवन बिताती हो॥
कुहू कुहू! मधुर मधुर, स्वर लहरी में,
किसकी 'विकल' भावनाओं को जगाती हो।
आती हो बसन्त ही के संग, बस अन्त कर,
कोकिला कुमारी कहो, कहा चली जाती हो॥

(९०)

रक्षक! गरीब की न, भक्षक धनी की हूँ मैं,
सीना सहजोर नहीं, सीना सहजोर से।
चाहना कभी न कुछ, उर के उदार हैं,
कहना नहीं है कुछ, उर के कठोर से॥
मैं तो अब दुनिया से, दोनों उठा बैठी हाथ,
दिन रात दिल में, दरद एक ओर से।
घायल 'विकल' आह! जायेंगे निकल प्राण,
मेरी ओर देखना न, श्याम दृग कोर से॥

(९)

विकल' वियोग की, जली जो उर बीच ज्वाल,
जल गये ज्वालामुखी, जला आसमान है।
ठंडी सांस ठंडा कर देती, जम जाता तब,
पाला ये नहीं है ! मेरा, आला अरमान है ॥
करके किसी की याद, रोई बना डाला आज,
अश्रु बिन्दुओं ने, हिन्द सागर महान है।
सोम मानसून उठा, कुहरा उसासन का,
मेरी एक ! आह ने, बनाया आसमान है ॥

(९२)

दिल में दिखाई ! दिल-दार ने झलक एक,
लगी न पलक हाय ! जीती मर लूंगी मैं।
डाल बैठी सोचे बिन, साँप की बंबी में हाथ,
अपने किये का अब, आप भर लूंगी मैं ॥
भले ही सताये कोई, मुझ को निठुर और,
चीर के कलेजा ! उर धीर धर लूंगी मैं।
'विकल' जलेगी जब, उर में वियोग ज्वाल,
ठण्डी भर सांस दिल, ठण्डा कर लूंगी मैं ॥

(६३)

केशव कृपा की कब ! कोर हो हमारी ओर,
रुकने न पाता आज, नैनन से नीर क्यों।
सुनती हूँ ! दुखियों के, साथी हैं सदैव आप,
'विकल' न बन पाती, कोई तदबीर क्यों॥
घटती नहीं है नित, बढ़ती ही ! जाती देव,
आपदा हमारी हुई, द्रोपदी का चीर क्यों।
दुनिया फिरी है जब, मुझ से ! हे दीनबन्धु,
फिरने न पाती आज, मेरी तक़दीर क्यों॥

(६४)

ऐसा हो रहा है क्यों, मैं कुछ न समझ पाई,
समझ सके हो तो, मुझे भी समझाइये।
पाप पूर्व जन्म का ! या इस जन्म का है पुण्य,
'विकल' हृदय की सभी, दुविधा मिटाइये॥
जीवन की उलझन, उलझी है आज ऐसी,
किसी भाँति सुलझ-सके तो सुलझाइये।
क्या करूँ मैं ! क्या है, कर्त्तव्य जब ऐसी दशा,
मेरे लिये 'उचित' उपाय ! बतलाइये॥

(६५)

कहना था मौखिक सो, मीरा ने 'विकल' कहा,
समझे को और ! समझा दिया भली प्रकार ।
गुप्त रूप द्वारा पहुँचाये, आप लाये पत्र,
विप्र रामदास ने, उठा लिया समस्त भार ॥
मार्ग का प्रबन्ध कर, पूज गिरजा गणेश,
हरि का लगाये ध्यान, ऊँट पै हुआ सवार ।
जा रहा पवित्र मन, अति ही प्रसन्न मग्न,
पूर्व जन्म का ! महान, साक्षात संस्कार ॥

(६६)

मार्ग की अनेक ! कठिनाइयां उठाता हुआ,
जीवन के तत्व का, महत्व आज पा गया ।
साहसी के शीश पर, प्रभु का सदैव हाथ,
यही भाव ! और पथ, सुगम बना गया ॥
साधना किसी की व्यर्थ, जानी नहीं देखी कभी,
फल भी ! पुनीत कर्म का, पुनीत पा गया ।
लक्ष पर ! जब नित्य बढ़ता 'विकल' रहा,
कुछ ही ! दिनों में आप, चित्रकूट आ गया ॥

(६७)

संध्या का समय था, भासमान ने पयान किया,
बदल रहा था रंग, आप आसमान का।
अंगड़ाई लेती चली आई ! निशा माननी सी,
जिस को था मानं सुर मई परिधान का ॥
पक्षीगण लौटे निज-नीड़ को उमंग भरे,
कुछ भी न ध्यान था, उड़ान की थकान का।
बैठे परिवार में ! असीम सुख पा रहे थे,
गुणगान करते 'विकल' भगवान का ॥

(६८)

पर्णकुटी तुलसी की, देख हो गया प्रसन्न,
सुख का कहीं भी मिल, पाया नहीं ओर छोर।
शीतल सुगन्ध मन्द, चलती 'विकल' वायु,
प्रकृति का दृश्य देख, ले उठा हृदय हिलोर ॥
निर्झर का गीत कहीं, पक्षियों की मीठी तान,
सिंह की दहाड़ और, कूकते कहीं थे मोर।
बार बार कर के प्रणाम, पत्र दिया हाथ,
विप्र चुपचाप ! आप बैठ गया एक ओर ॥

(६६)

अतिथि की सेवा से, निवृत हुए सन्त किन्तु,
दुख के हृदय में, घनघोर घिरने लगे।
जैसे जैसे पढ़ते थे, आ रहे थे क्रम वार,
दृष्टि में दुखद दृश्य, वही फिरने लगे॥
शोक सिन्धु की तरंग, रंग ला रही थी आप,
डूबते उछलते 'विकल' तिरने लगे।
सान्त्वना सहानुभूति, वेदना मचल पड़ी,
हृदय भर आया! अश्रु विन्दु गिरने लगे॥

(१००)

कुछ देर के लिये तो, हो गए विचार शून्य,
बोल उठे! राम राम, एक ही उसास में।
चारों ओर देखा किन्तु, कुछ भी न देखा वहाँ,
और कोई कहीं भी, नहीं था आसपास में॥
आधी निश बीत गई 'विकल' हृदय था किन्तु,
चन्द्रमा प्रसन्न, पूर्णिमा के मृदु-हास में।
तुलसी ने मीरा को! संदेशा अन्त लिख दिया,
मन्द मन्द दीपक के, धुंधले प्रकाश में॥

(१०१)

सिद्ध श्री सीता राम जी, सदा सहाय करें,
और कोई कब, आसका है दुखियों के काम।
प्रेम की पवित्र डोर, का विचित्र! है प्रभाव,
बन्ध जाते आप! प्रेम, बन्धन में प्रेम धाम॥
उसके समान विश्व में है, भाग्यशाली कौन,
रसना पै जिसकी, सदैव रसिया का नाम।
'विकल' विरागिनी को, अचल सुहागिनी को,
मीरा बड़ भागिनी को, तुलसी की राम राम॥

(१०२)

पत्रिका तुम्हारी पढ़, वेदना अपार हुई,
एक बार नहीं मैंने! पढ़ी उसे बार बार।
उत्तर स्वरूप अब, 'विकल' हृदय के भाव,
लिख तो रहा हूँ किन्तु, बहती है अश्रुधार॥
राम की शपथ! राम का गुलाम, राम हित,
भीरू नहीं! यातनायें, सहने को है तैयार।
सत्य तो! सदैव सत्य, रहना अटल मीरा,
दुख की निशा का, आप दूर होगा अन्धकार॥

(१०३)

राम को समान सब, राम सा महान कौन,
राम जीव मात्र का, विकल प्राणाधार है।
राम का स्वरूप कोई, विरला ही जान पाया,
राम की विचित्र महा, महिमा अपार है॥
राम का महत्व सत्य, विश्व में रमा है राम,
राम नाम सत्य, राम नाम सर्व सार है।
राम से न दूर मीरा, मन में विचार देख,
मीरा में भी राम का, रकार है मकार है॥

(१०४)

उसके अनेक रूप, उसके अनेक नाम,
जैसा मन भाये बस, वैसा छवि धाम हैं।
विश्व का नियन्ता है ! न उससे छिपा है कुछ,
घट-घट वासी 'अविनाशी' अभिराम है॥
'विकल' अधर्म देख, जैसे भी हो जिस विध,
आततायियों का तो, मिटा ही देना नाम है।
राम परशुराम ! बलराम, एक मीरा वही,
काम पड़ने पे ! बन जाता 'घन-श्याम' है॥

(१०५)

प्राण पर खेल कर, खेलने चला जो खेल,
उसको डिगाये तो, किसी का हौसला नहीं।
हरि के परम भक्त, जग से विरक्त हुए,
कौन है जो घोर, आपदाओं में पला नहीं॥
ओढ़ चीर शीतल, अनल मध्य वैठ गई,
आप जली किन्तु, प्रहलाद तो जला नहीं।
रुकना तो प्रेम पन्थी, जानते न मीरा अरी,
झुकना तुझे तो किसी, काल में भला नहीं॥

(१०६)

अपनी व्यथा को, अपना ही कोई जानता है,
समझ सका है, जगती में पर पीरा कौन।
निवल का बल, असहाय का सहाय वही,
उसके समान दूसरा है, बल वीरा कौन॥
बड़े बड़े नीति वान, देखते अनीत रहे,
कोई भी न बोला, रोनी 'विकल' अधीरा कौन।
घट गया भुज-बल, हट गया नीच आप,
द्रोपदी के पट से, लिपट गया मीरा कौन॥

(१०७)

जग के समस्त रस, त्याग बड़ भागनी तू,
एक प्रेम रस में ही, रसना सनी रहे।
पीना पड़े विष भी तो, मनमें न लाना रिष,
'विकल' भले ही मुख, हीरे की कनी रहे॥
अत्याचार सहना, सहर्ष अत्याचारियों के,
चाहे तलवार तेरे, शीश पै तनी रहे।
मारना न मारना, उसीके हाथ मीरा तेरी,
ध्रुव के समान ध्रुव, धारणा बनी रहे॥

(१०८)

जीवन मनुज का न, बार बार मीरा मिले,
जीवन की वीणा का, सजग तार कर दे।
मन में बिठा के मन, मोहन की मूर्ति को,
चरणों पै सर्वस्व, बलिहार करदे॥
सरसों सुमेरु करने में, लगती न देर,
चाहे तो सुमेरु को, 'विकल' छार करदे।
उसके तो बाँये हाथ का है, खेल मीरा तुझे,
तृण पै बिठाय के, पयोध पार कर दे॥

(१०६)

पागल दिवाना सिढ़ी, समझा सभी ने क्योंकि,
साधुओं की अपने, जमात साथ लाया था।
ताने मार मार जग, उपहास करता था,
कोई काम आया नहीं, कोई काम आया था॥
बाप की दशा निहार, बेटी को अपार दुख,
फिर भी 'विकल' अपने, को अपनाया था।
कञ्चन की बरसात, कर के बना दी बात,
नरसी का भात मीरा, किसने भराया था॥

(११०)

भक्त प्रतिपाल को सदैव, भक्त का है ध्यान,
सर्व शक्तिमान, अपने को अपनाता है।
दुख में दुखी है दुख, भक्त के निवारणार्थ,
'विकल' अनेक दुख, दुखिया उठाता है॥
लोक लाज अपवाद, राग द्वेष भेद भाव,
मान अपमान कुछ, ध्यान ही न लाता है।
डाला प्रेम फन्दा तब, वही वृजचन्दा मीरा,
भक्त हित बन्दा 'नाईनन्दा' बन जाता है॥

(१११)

सहनी पड़ी है चोट, कितनी ही पत्थर को,
शिल्पकार जब कोई, प्रतिमा बनाता है।
उसी प्रतिमा को जग, आदर के साथ देव,
मन्दिर में 'विकल' सप्रेम पधराता है॥
धूप दीप नवेद्य, भोग पूजा आरती हो,
'पंचामृत' पान कर फूला न समाता है।
मस्तक झुकाता जग, माँगता है भीख मीरा,
ठोकरें जो खाता वही, ठाकुर कहाता है॥

(११२)

कंचन कलश में, भरा हो चाहे गंगाजल,
भोग लगते हों नित्य, माखन मलाई के।
ऐसे हरि भक्त किस, काम के मलीन मन,
बाहर से 'विकल' दिखाने स्वच्छताई के॥
जानते नहीं हैं हरि, मानते न भेद भाव,
भूखे भगवान सदा, मीत की मिताई के।
अदना था किन्तु बद. ना था सदना था मीरा,
बनना पै रीझा कौन, सदना कसाई के॥

(११३)

हरि के दिवाने मीरा, हरि ही से माँगते हैं,
जग के समक्ष फैलाता न कभी हाथ है।
स्वाभिमानियों को, स्वाभिमान का सदैव ध्यान,
'विकल' किसी के आगे, झुकता न माथ है॥
मीरा! धन धाम का, वृथा है मोह अभिमान,
यहीं रह जाता, जाता कुछ भी न साथ है।
रूँठ जाये तुझ से, रमा तो क्या करेगी तेरा,
क्योंकि तेरे साथ में, सदैव रमानाथ है॥

(११४)

विध के विधान की, महान महिमा है मीरा,
दुख सुख दोनों जहाँ, आप मिलते ही हैं।
धूल से हुए हैं उत्पन्न, तरु फूल फल,
अन्तकाल धूल में 'विकल' मिलते ही हैं॥
ताप शीत बरसात, झंझावात दिन रात,
कुछ भी न बात, डाल, पात हिलते ही हैं।
खिलना अभिष्ट है तो, रोक सकता है कौन,
कंटकों के मध्य मीरा, फूल खिलते ही हैं॥

(१६५)

सोचना तुम्हें है नहीं होगा, जो होगा राम,
मिट न सकेगा अंक, जैसा लिखा माथ का !
साथ तो नहीं है कभी, जिसका न छूटे साथ,
तनका न आसरा, किसी के और साथ का ॥
जग दुखदाता मिले, और अपना उन्हें,
हृदय से लगाता चल, 'विकल' अनाथ का !
जिनने बनाया दूसरे को, अरी ! भूल गई,
रतन, भरोसा मीरा, हाथी चले हाथ का ॥

(१६६)

तुम्ह को मिटायेगा तो, सारा मिट जायेगा आप,
अपने लिये ही दुख, नागी बन जायगा !
जीने का किसी के, अधिकार छीनना है पाप,
अधिकार हीन, अधिकारी बन जायगा ॥
'विकल' निकल तो गई थी, किन्तु सोचा नहीं,
निबल का बल 'भिखारी' बन जायगा !
जानतीं 'अमा' थी कब, मेरा उर चीर के भी,
हिरनि को चन्द्रमा, कटारी बन जायगा ॥

(११७)

जीवन का लक्ष्य जो, बनाया मन भाया मीरा,
'विकल' सुलक्ष्य पै, सहर्ष खपना ही है।
दैहिक हो दैविक, भले ही चाहे भौतिक हो,
कर्म के बहाने त्रय, ताप तपना ही है॥
अपने की बात ही क्या, अपना तो अपना है,
उसी का हमें तो नित्य, नाम जपना ही है।
विश्व सपना है सत्य, कहता है विश्व मीरा,
'विश्व न सही तो विश्व, पति अपना ही है॥

(११८)

किन्तु एक बात याद, रखना हमारी देवी,
देह क्या है पुतली है, हाड़, माँस, चाम की।
साँस के सहारे पर, जीवन लटक रहा,
साँस रुकी देह फिर, किसी के न काम की॥
ऐसे नर पातकी का, जीवन वृथा ही गया,
जिसने कभी न झाँकी; झाँकी छवि धाम की।
धन बल रूप रंग, धूल हुआ मीरा देख,
टंगी रही पीपल पै, हड़िया छदाम की॥

(११९)

जो कुछ हुआ है हो रहा है, तेरे साथ अरी,
भ्रम है कराल काल, चक्र ही की चाल है।
सुख में न हँसता है, दुःख में न रोता कभी,
'विकल' मनस्वियों का, जीवन विशाल है॥
करनी अवश्य भरनी ही, पड़ती है किन्तु,
होती कभी देर फल, पाता तत्काल है।
काम क्रोध लोभ मोह, राग द्वेष मीरा देख,
माया मायापति की, यही तो माया जाल है॥

(१२०)

भोग भोग ऊब गये, कितने ही भूखे अभी,
प्यार के दुलार के, किसी के अभिसार के।
कितने दयालु दया, छमा का पढ़ाते पाठ,
हृदय हीन कितने, दिवाने तलवार के॥
साम दाम दण्ड भेद, नीति में निपुण और,
कितने कुशल मुख, देखे व्यवहार के।
'विकल' विभिन्न दृश्य, जग में निहार मीरा,
कैसे कैसे चित्र हैं, विचित्र चित्रकार के॥

(१२१)

कोई धन धाम यश, नारि सुत चाहता है,
कोई छोड़ गया इन्हें, घर से निकल है।
स्वार्थ साधना में कोई, सत्य को छिपाये लिये,
हाथ में सुमरनी, कतरनी बगल है ॥
जीवन का तत्व औ, महत्व जानने के हेतु,
कोई बन बैठा जड़, भरत अटल है।
जग तो विकल है न, इसमें है झूठ मीरा;
जग को बनाने वाला, प्रथम 'विकल' है ॥

(१२२)

आई जब गन्ध पतझड़ की बसन्त में तो,
नई कोपलें ही क्या, नवीन किसलय ही क्या।
शीतल सुगन्ध मन्द, वायु में छिपा है ताप,
उर का किसी के दुख, हरेगी मलय ही क्या ॥
जीव निर्जीव पर मृत्यु की लगी है आँख,
फिर कोई विश्व बीच, बोलदे अभय ही क्या।
मीरा पूर्ण राम है! अपूर्ण है 'विकल' विश्व,
फिर तो अपूर्ण का, अपूर्ण परिचय ही क्या ॥

(१२३)

कठिन आघात जो न, सह सका चुप चाप,
मरे के समान है, वह जीवित हृदय ही क्या।
अपने को जीत ही न पाया, जो महान मूढ़,
और को करेगा वह, बावला विजय ही क्या ॥
विश्व रंग मंच पर, खेलने अनेक खेल,
होगया पटाक्षेप, शेष अभिनय ही क्या।
मीरा पूर्ण राम है! अपूर्ण है 'विकल' विश्व,
फिर तो अपूर्ण का, अपूर्ण परिचय ही क्या ॥

(१२४)

देखी है धनेश धन, धारियों की धूम धाम,
सर्व सम्पदा सदैव, द्वार पै खड़ी रही।
वीरता प्रचण्ड देख, काँप उठे लोकपाल,
डोल गई धरणी पै, धाक ही बड़ी रही ॥
ऋषि मुनि साधु सन्त, देखे हैं अनन्य भक्त,
जीवन की हर एक, सुखद घड़ी रही।
अन्त काल विध का, विधान देखने को मीरा,
'विकल' मसान बीच, खोपड़ी पड़ी रही ॥

(१२५)

सुकुमारता पै सुकुमारता को वार दिया,
सुकुमारता पै सुकुमारता को वार दिया,
भार क्या सहेंगे हाथ, फूल की छड़ी रही।
चन्द्रमुखी उन्नत उरोज, मृगनैंनी बाल,
नवल नवेली भुज-पाश जकड़ी रही ॥
राग रस रूप रंग, यौवन तरंग संग,
रति औ अनंग की, उमंग तकड़ी रही।
अन्त काल विधि का, विधान देखने को मीरा,
'विकल' मसान बीच, खोपड़ी पड़ी रही ॥

(१२६)

ऊँचे ऊँचे महलों में, करता निवास कोई,
देखले किसी के लिये, टूटी झोंपड़ी रही।
यौवन तरंग में, चला है कोई सीना तान,
कमर किसी की झुकी, हाथ लकड़ी रही ॥
जी भर हंसे थे कभी, कितने ही भाग्यवान,
हत भागियों की लगी, आंख से झड़ी रही
अन्त काल विधि का, विधान देखने को मीरा,
'विकल' मसान बीच, खोपड़ी पड़ी रही

(१२७)

हृदय में स्नेह का ! नहीं था लेश मात्र नाम,
उलझी किसी की तभी, जीवन लड़ी रही।
दीन दुखी रोगी औ, अनाथ की दशा को देख,
नाक नाक वालों की, सदैव सिकुड़ी रही॥
वैभव सुयश पाय, कोई बन बैठा प्रभु,
स्वाभिमानियों की आन, आन पै अड़ी रही।
अन्त काल विध का, विधान देखने को मीरा,
'विकल' मसान बीच, खोपड़ी पड़ी रही॥

(१२८)

मल मल कर पैर, रखें मखमल पर,
नाजुक मिजाज़ आप, अपनी ही शान के।
केवड़ा गुलाब खस, सन्दल अगर मुश्क,
चैन कहां पाये बिना, पान जाफरान के॥
सागिर सुराही साक़ी, सुन्दरी शराब सुखं,
'विकल' निशाने नाजनी के नैन बान के।
जिनके सितारे थे 'बुलन्द' कल मीरा वही,
गिनते बिचारे आज, तारे आसमान के॥

(१२६)

मैं हूं राज रानी यदि, सोचती हो यह बात,
: देख लेना यहीं! राजधानी रह जायगी।
मेरी मेरी करके, अनेक चले गये मूढ़,
शेष दुनिया ही आनी, जानी रह जायगी॥
'विकल' रही है सदा, उसकी रहेगी और,
कभी न किसीकी, मनमानी रह जायगी।
उसकी दीवानी बन, जायगी तो मीरा देख,
तेरी तेरे प्रेम की, कहानी रह जायगी॥

(१३०)

देख दुख सिन्धु को, अधीर हो न मीरा अरी,
जग में हितू न जो, तुम्हारा चला आयेगा।
किन्तु वही एक है, अनेक जिसके स्वरूप,
तूने यदि 'विकल' पुकारा चला आयेगा॥
सृष्टि से हटा के दृष्टि, उस पे लगायेगी तो,
अनायास किसीका, सहारा चला आयेगा।
तेरा घन श्याम ही, बचाना चाहता है तब,
तेरी ओर आप ही, किनारा चला आयेगा॥

(१३१)

हरि से विमुख हो गया है राणा ! आततायी,
दूर दुर्बुद्धि के विकार, सकता है कौन ।
'त्रिकल' चढ़ा है जिस, मन पै सुप्रेम रंग,
यम यातना से भी, उतार सकता है कौन ।।
करुणानिधान की हो, जिस पै कृपा की कोर,
उसे वक्र दृष्टि से, निहार सकता है कौन ।
लेख ना मिटेगा लिखा, जो कुछ लिलार पर,
देखना है मीरा तुझे, मार सकता है कौन ।।

(१३२)

जीवन की तरणी को, बहने दे जैसी बहे,
सौंप उसे जीवन का, सार बन जायेगी ।
जीव जन्तु भँवर भले हो, विपरीत वायु,
'विकल' तरंगों का, दुलार बन जायेगी ।।
इस पार उस पार, की न बात चाहै जब,
मझधार में भी तो, कगार बन जायेगी ।
उसी को निहार तू ! पुकार पार होगी मीरा,
तेरी अश्रुधार 'पतवार' बन जायेगी ।।

(१३३)

दुनिया जो दूर दूर, करती है तुझे आज,
यही तेरे कर का, खिलौना बन जायगी।
पाये जिस भूमि पै, अनेक दुख तूने यही,
तेरे लिये सुखद, बिछौना बन जायगी ॥
कलुषित जग ने लगाई 'कालिमा' जो तुझे,
दिव्य रूप होगा, 'सुदिठौना' बन जायगी।
करदें निहाल जब, श्याम हों दयाल मीरा,
मिट्टी तेरी ठोकर से, सोना बन जायगी ॥

(१३४)

पथ जो गहा है उस, पथ पै सहर्ष बढ़,
देख आपदायें पग, पीछे न हटाना तू।
इष्ट का अभिष्ट का, सदैव रखना है ध्यान,
'विकल' सुनीति प्राण-पण से निभाना तू ॥
रोना हो तो रोना दिल खोल कर एक बार,
गाना हो तो जी भर उसी के गुण गाना तू।
होना न अधीर चाहें, जाये यह शरीर मीरा,
प्रेम की लकीर पै, फकीर बन जाना तू ॥

(१३५)

हानि लाभ जीवन, मरण यश अपयश,
हाथ में उसीके ध्यान रखना तू आठों याम।
सत्ता बिन पत्ता हिलता न तत्ता होता कान,
उसकी महत्ता को, निहार छोड़ धन धाम॥
आपदायें आती हैं, अनेक प्रेम पंथियों पै,
रुकना कहीं न! बढ़ी चली जाना अविराम।
मीरा धीर धारियों! निहारियो न जग ओर,
हारियो न हिम्मत! बिसारियो न राम नाम॥

(१३६)

मन के तुरंग की है, बड़ी ही विचित्र गति,
ढीली कभी इसकी तू, छोड़ना लगाम ना।
सावधान साधना का, चाबुक सतर्क रहे,
कितना ही दौड़े निज, लक्ष ही पै थामना॥
अपना बनाया जिसे, उसका निभाना साथ,
काम कुछ आये रूप, रंग धन धाम ना।
समवेदना के साथ साथ, मीरा तेरे लिये,
तुलसी 'विकल' की अनेकों शुभ कामना॥

(१३७)

आँखें अलसाईं तब, दीप को बुझाया और,
पलकें उठा न सकी, नींद का 'विकल' भार।
जाती हुई ! निश देख,तब सन्त तुलसी भी,
सियाराम जोर से, पुकार उठे ! एक बार ॥
सोये सभी किन्तु जागता था 'ऊँट' चाँदनी में,
प्रकृति नटी की दिव्य, छटा को रहा निहार।
आया जब से था यहाँ, पाया नहीं कोई दुख,
मन में प्रसन्न हर्ष का, न रहा पारावार ॥

(१३८)

रखता संभाल पग, पीता झरनों का जल,
मन माने खाता फल, उसको थी पूरी छूट !
कन्दरा गुफाओं पर्ण-कुटियों में जहाँ तहाँ,
सभी ओर देखा राम नाम की, मची है लूट ॥
ऊँचे ऊँचे बालू के ! न टीबे दीखते हैं यहाँ,
कैर हैं ! न खेजड़ा, बबूल है न भरभूंट।
अति सुख पाता, सभी ओर मुसकाता फिरै,
फूला न समाता ! ऊँट, देख देख चित्रकूट ॥

(१३९)

ऊँट को निहार ! एक सियार ने प्रणाम किया,
बोला मेरी बात मानें, लोचनाभिराम क्या ॥
अपनी सु छवि को, मुझे भी ! कुछ देर और,
देखने का अवसर, देंगे छवि धाम क्या ॥
देखता हूँ ! दीख रहे, कितने थके हैं आप,
इतना उठाया कष्ट, आन पड़ा काम क्या ।
कुछ तो बताओ मित्र, 'विकल' हुए क्यों आप,
आये हैं कहां से, आपका है शुभ नाम क्या ॥

(१४०)

बोला ऊँट ! करते, निवास जहाँ वीर धीर,
बिन बात कभी कोई, होता नहीं राड़ है ।
आन बान शान के दिवाने, स्वाभिमानी धनी,
झूँठी बात ! झूठ की न, लेता कोई आड़ है ॥
'विकल' बड़े ही ! रणबांकुरे लड़ाके वहाँ,
शेर के समान ! शूरमाओं की दहाड़ है ।
वहीं का हूँ आदि वासी, बीते कितने ही युग,
ऊँट मेरा नाम ! जन्मभूमि मारवाड़ है ॥

(१४१)

उसके समान अन्य, धन्य भाग्यशाली कौन,
जग में जो अपना, अमर नाम कर जाय ॥
पर उपकार दया, धर्म का 'विकल' मूल,
जैसे भी हो दुखियों की, आपदायें हरजाय ॥
वीरजा ! पवित्र वीर भूमि, धर्म कर्म भूमि,
वीरता सहित वीर, भवसिन्धु तर जाय ।
बड़े बड़े मारुओं की, यही तो है मारूभूमि,
मरूभूमि इसे जो, कहे वो क्यों न मर जाय ॥

(१४२)

अपने ही पग में, कुल्हाड़ी मारते हैं जब,
अपना सुयश ! आन बान, दहने लगे ।
मार धर ! मार धर, मार धरते ही रहे,
मरुधर कह ! अपमान सहने लगे ॥
मारधाड़ मारधाड़ की, मची थी धूमधाम,
शेर की थली पै हा ! सियार रहने लगे ।
'विकल' प्रसिद्ध मारधाड़, जिसकी है अब,
कायर उसीको, मारवाड़ कहने लगे ॥

(१४३)

हृदय हीन की तो, बात छोड़दो सरस हृदय,
प्रकृति नटी के हाथ, बिक बिन मोल जाय ।
आँख बन्द करलें तो, देखा एक क्षण ही में,
सत्य की तुला पे कोई, धर्म कर्म तोल जाय ॥
अपनी महान ! वीरता के, अपने ही आप,
वैसे ही ! अतीत के पुनीत, पृष्ट खोल जाय ।
'विकल' यहाँ की वायु, ऐसी मतवाली कुछ,
देखे मनडोल को तो, क्यों न मन डोल जाय ॥

(१४४)

गंगा यमुना का जल, कितना पवित्र होता
खूब जानता है सब, ज्ञानी मारवाड़ का ।
'विकल' अभाव ही में, होता है किसीका मूल्य,
बना है ! कहानी अकुलानी, मारवाड़ का ॥
कूप में निहारो तब, तारे जैसा दीखता है,
खीचै कौन ? खींचै स्वाभिमानी मारवाड़ का ।
नर तन पाया किन्तु, जीवन वृथा ही ! गया,
जिसने पिया न कभी ! पानी मारवाड़ का ॥

(१४५)

स्वागत को आपके, अनेकों साथी आयें आप,
मदभरी तान ! जब, सब को सुनाओगे।
ठंडे ठंडे रेत की, बहार लेना सारी निश,
किसी भाँती का भी नहीं, कोई कष्ट पाओगे ॥
जितने भी आज तक, फल खाये होंगे यार,
सत्य कहता हूँ मैं, सभी को भूल जाओगे।
आने का वहाँ से कभी, लोगे न 'विकल' नाम,
मेरे यहाँ ! आओगे 'मतीरा' जब खाओगे ॥

(१४६)

ऐसा कौन जग में है, वस में किया न जिसे,
काल से लड़ाइ लड़ै, आदमी की छाती है।
शेर के समान बली ! कौन दूसरा है किन्तु,
बुद्धि के समक्ष, वीरता न काम आती है ॥
अंकुश जरासा ! पर, उसको निहारते ही,
हाथी से महान की भी, नानी मरजाती है।
मेरी नाक छेद कर, डालदी 'नकेल' हाय,
आदमी से यार कुछ, पार न बसाती है ॥

(१४७)

'विकल' उज्जैन पति, महाराजा भोज धन्य,
ध्यान रहा जिन्हें देव-वाणी के विकास का।
बड़े बड़े गुणवान, पाते सर्व भाँति मान,
उसकी उदारता की, थाह कौन? पा सका॥
जिसके 'विकल' मेघदूत की, मची है धूम,
क्या पढ़ा सन्देश कभी, यक्ष के प्रवास का।
भारत प्रसिद्ध श्रेष्ठ! कवि कुल चूड़ामणि,
मैं ही गुरुदेव हूं! महान 'कालीदास' का॥

(१४८)

सीधे सीधे जब चाहे, कोई मुझसे ले काम,
काम करने में नहीं, करता मिजाज हूँ।
सात दिन बिन पानी, पिये चलता ही रहूँ,
जाती हुई किसी की, बचा ही लेता लाज हूं॥
हाथी घोड़े बैल आदि, की न जहाँ एक चले,
रेत हो भयंकर तो! मैं ही सिर ताज हूँ।
वायु का नहीं हूँ और जलका 'विकल' नहीं,
थल का हूँ! थल में भी, रेत का जहाज हूँ॥

(१४९)

भारत है ! कितना महान, स्वाभिमान पूर्ण,
उसका महत्व वेद, गा रहा अथर्व है ।
'विकल' भले ही प्राण जायें, जन्म भूमि हित,
मानवीयता है यही, धर्म कर्म सर्व है ॥
जननी समान ही तो, होती जन्मभूमि निज,
इससे ! बड़ा न कोई, तीर्थ है न पर्व है ।
अपनी तो अपनी है. जैसी भी है ! भली बुरी,
मुझे मेरी ! जन्मभूमि, पै महान गर्व है ॥

(१५०)

कोई कहे कुछ भी, न चिन्ता इसकी है ! मुझे,
कितना ही तिल को, बनाया गया ताड़ हो ।
परम हितैषी ! इष्ट, मित्र भले रूठ जायँ,
किसी की न मानूँ, भले कितना बिगाड़ हो ।
'विकल' हूँ दीन बन्धु, मेरी अभिलाषा यही,
कैसे भी हों ! झाड़ चाहे कितनी उजाड़ हो ॥
चाहता हूँ ! प्रभु मैं, अनेकों युग युग मेरा,
जब भी हो जन्म, जन्मभूमि मारवाड़ हो ॥

(१५१)

'मेड़ता नगर' मारवाड़ में, प्रसिद्ध एक,
यही तो है मेरी जन्म भूमि जननी महान।
जहाँ के यशस्वी नृप, महाराजा रत्नसिंह,
रखते सभी से हैं, निराली आन बान शान॥
एक मात्र उनकी! सुपुत्री है 'विकल' मीरा,
कृष्ण की अनन्य भक्त, ज्ञानवान बुद्धिमान।
मीरा ही के साथ मैं भी, आगया चित्तौड़ क्योंकि,
उसके दहेज में, किया है मुझको भी दान॥

(१५२)

मेरा ऐसा भाग्य कहाँ, देखता जो चित्रकूट,
आज मैं तो जीवन, सुफल कर पाया हूँ।
मार्ग की अनेक! कठिनाइयाँ, मुसीबतों को,
सहता रहा हूँ मैं, कभी न घबराया हूँ॥
मेरी महारानी मीरा, दुख में पड़ी है आज,
दुखिया के उर का, सन्देश कुछ लाया हूँ।
राम का परम भक्त, रहता 'विकल' एक,
नाम 'तुलसी' है उस ही के, यहाँ आया हूँ॥

(१५३)

ऊँट कहता ही रहा, कुछ भी न बोला पर,
'तुलसी' का नाम सुन, कहने लगा सियार।
उसकी तो बात क्या, महान दर्शनीय सन्त,
परम पवित्र आत्मा, है उर का उदार॥
वसुदैव है कुटुम्ब, मानता यही! सदैव,
राग द्वेष किसी से न, उसको 'विकल' प्यार।
'सियाराम' ही को मान, सर्वस्व ऐसा रमा,
सिया राम ही को, सब जग में रहा निहार॥

(१५४)

धूर्त छली की न एक चलती, यहाँ की भूमि,
कितना हृदय में, राम से है प्रेम! तोलती।
वायु में निराली कुछ ऐसी, प्रेम साधना है,
हर एक साँस में, सुखद सुधा घोलती॥
माया मोह ममता के, फेर में हुये जो अन्ध,
यहाँ की सुगन्ध ज्योति, देती नेत्र खोलती।
जीव की तो बात ही! उठानी वृथा प्राण हीन,
मिट्टी भी 'विकल' नित्य राम राम बोलती॥

(१५५)

देखते हो मित्र ! सामने जो दीखता है घाट,
अति रमणीय सुखदाई, कितना ललाम ।
साधना में लीन जहाँ, रहते अनेक सन्त,
जग से विरक्त मौन, लेते नित राम नाम ॥
कैसा दर्शनीय दृश्य, परम पुनीत होगा,
भक्त हित आये होंगे, जब यहाँ छविधाम ।
'तुलसी' तो चन्दन को, घिसने में लीन ! पर,
तिलक लगाते रहे, आप भगवान राम ॥

(१५६)

राम दर्शनों की, अभिलाषा थी सभी के उर,
फ़ैली चारों ओर, भगवान की बड़ाई थी ।
ऋषि मुनियों की सदा, लगी रहती थी भीड़,
मूरत सभी के मन, मोहनी समाई थी ॥
कितना था ! प्रेम जब, भरत के साथ सारी,
मिलने को राम से, अवध चली आई थी ।
किया था ! निवास 'वनवास' कुछ दिन यहीं,
सिया राम लखण ने, कुटिया बनाई थी ॥

(१५७)

उर में सभी के, सद्भावना विचार शुद्ध,
अन्तर नहीं हैं यहाँ, निर्धन नरेश में।
बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी, ऋषि मुनि साधु सन्त,
करते निवास हों! भले ही किसी भेष में॥
परम पुनीत दृश्य, देख भूल जाते सब,
दुखी हो! भले ही मन, कितना ही क्लेश में।
और की तो बात क्या 'विकल' भगवान राम,
आई आपदा तो, चले आये इसी देश में॥

(१५८)

अत्रि ऋषि बन गये, तीनों देव क्षण ही में,
देखने को पतिभक्ति, परम सयानी की।
आये जब द्वार पर, सारी माया जान गई,
खड़ी हुई! आदर से, खूब अगवानी की॥
तीनों को बनाया शिशु, पलने में रोते पड़े,
निरख 'विकल' शक्ति, सती स्वाभिमानी की।
पतिव्रता धर्म बतलाया था, सिया को यहीं,
कुटिया थी अनसूय्या, अमर कहनी की॥

(१५६)

नैन नेह नीर भर आता, अति पाता सुख,
राम के सुप्रेम की, पवित्र पौर कौन है।
कितना ही 'विकल' अधीर दुखी शोकित हो,
सर्वदा निवारै दुख, ऐसी ठौर कौन है॥
देखते ही! बनता है, कहते बने न कुछ,
प्रकृति छटा में अन्य, सिर मौर कौन है।
जग मध्य जीवन, सुफल करने के लिये,
मेरे 'चित्रकूट' के, समान और कौन है॥

(१६०)

आन वान शान मर्यादा, जन्मभूमि! हित,
प्राण पर खेलने की, ठान ही ठनी रहें।
वात वात ही में! वन जाती और जाती वात,
वही वात वाला है, जो वात का धनी रहे॥
दुख सुख क्या है? जव 'विकल' विचार उच्च,
प्रीत नहीं घटै नित्य, वढ़ती घनी रहे।
चाहे मारवाड़ रहो, चाहे चित्रकूट मित्र,
एक दूसरे की, सद्भावना वनी रहे॥

(१४५)

ऊँट औ सियार की, हुई समाप्त बातचीत,
एक दूसरे के प्रति, पूरा ज्ञान हो गया।
चले गये वहीं! दोनों, करते निवास जहाँ,
देखा जब दिवस का, अवसान हो गया॥
किन्तु आज ऊँट को, न आई नींद जाग रहा,
सम्भव है! जायें प्रात, ऐसा भान हो गया।
पक्षी गण राम का, गुणानुवाद गाने लगे,
प्राची दिश ओर! लाल, आसमान हो गया॥

(१४६)

होते ही प्रभात! गया, मांगने सप्रेम विदा,
देखा चारों ओर! अब, फ़ैलने लगा प्रकाश।
चरणों में लोटा तब, उर से लगाया उसे,
पत्र दिया तुलसी ने, विदा किया रामदास॥
राम का लगाये ध्यान, ऊँट पै सवार हुआ,
प्रेम भरी दृष्टि से, निहारा खूब आस पास।
'चित्रकूट' आना तो सरल, किन्तु जाना नहीं,
हो गया 'विकल' उर, एक बार अनायास॥

(१६३)

आई कठिनाई सामने तो, सामना ही किया,
धीरता से काम लिया, और बल पागया।
उसके लिये है ! भला, कौन सा दुरूह कार्य,
जिसके हृदय में, ध्येय अपना समा गया॥
शीश पर ! साहसी के, प्रभु का वरद हस्त,
जो कुछ अमंगल था, आप कतरा गया।
रामदास मंजिल को, पूरी करता ही रहा,
'विकल' चित्तौड़ ! अपने ही आप आगया॥

(१६४)

प्रथम तो रामदास, मिला राणा विक्रम से,
पूछा कहाँ गये थे, बनादी कुछ और बात।
फिर चुपचाप ! चला, मीरा के समीप गया,
देखा रो रही है, दुखिया की लगी बरसात॥
पत्र दिया ! था सतर्क, सभी ओर को निहार,
बोला देवी जाऊँ अब, आऊँगा मैं होते प्रात।
'विकल' विचारी मीरा, कैसे पढ़े बैठी रही,
साधन प्रकाश न, और हो चुकी थी रात॥

(१६५)

पाई पत्रिका तो, अकुलाई ऐसी बेसुध हो,
सारी निशि गाती रही, मंगल प्रभाती को।
पूरित सनेह से! निहार, देह दीप दिव्य,
क्यों न उकसाती आप, और प्रेम बाती को॥
चेत इतना ही था, अचेत अविरल मौन,
'विकल' बहाती मंजु, लोचनों की थाती को।
फूली न समाती, उर तपन बुझाती मीरा,
बार बार छाती से! लगाती रही पाती को॥

(१६६)

हो चुका प्रभात! किन्तु ध्यान ही नहीं था उसे,
लीन हो रही थी अभी, इष्ट में अभिष्ट में॥
उर में! उठी हिलोर, नाच रहा मन मोर,
और सराबोर थी, अनन्त प्रेम वृष्टि में॥
इस लोक से भी दूर, उस लोक से भी दूर,
घूमती थी और ही! नवीन किसी सृष्टि में।
'विकल' पलक मारना ही! भूल गई मीरा,
पढ़ गई सारी पत्रिका को, एक दृष्टि में॥

(१६७)

लच्च तो बना ही चुकी ! थी न शेष बात किन्तु.
सर्वथा उचित एक, शुभ सलाह मिल गई ।
'विकल' अथाह की, मिली न मिल सकेगी थाह,
थाह में किसी की एक, और थाह मिल गई ॥
जा रही थी अपनी, अटल धारणा के साथ,
राह में उसीके और, एक राह मिल गई ।
आह में मिली जो आह, होगई कराह चाह,
चाह में किसीकी एक, और चाह मिल गई ॥

(१६८)

मान तो चुकी थी वही, जो भी मानना था उसे,
किन्तु एक और ! दूसरे की, बात मानली ।
जानती जिसे थी, पहिचानती भली प्रकार,
उस ही से ! और कर, जान पहिचान ली ॥
पार क्या मिला है शक्ति, जिसकी 'विकल' अपार,
और उस अपार की, अपार शक्ति जानली ॥
ठान तो चुकी थी मीरा, पहिले ही किन्तु अब,
और निज लच्च पर, मिटने की ठानली ॥

विकल लिखित अन्य प्रकाशित पुस्तकें:—



विकल मरियम—मरियम का करुणामय जीवन और उसके पुत्र महात्मा ईसा का अमर बलिदान (खण्ड काव्य) मूल्य १)

मजदूर—भारतीय मजदूर के अनेक जीवन झाँकियों द्वारा हृदय को द्रवित करने वाली कविता पुस्तक मूल्य ॥)

किसान—किसान की वर्तमान दशा और अतीत की सुखद स्मृतियों का धुन्धला सा करुण काव्य मय चित्र मूल्य ॥)

राष्ट्रवीर वन्दना—राष्ट्र के महापुरुषों तथा अनेकों वीर और वीरांगनाओं के प्रति कवितावद्ध श्रद्धाँजलि मूल्य १)

विकल विनोद—बच्चों के लिये अच्छा मनोरंजन और शिक्षाप्रद हास्य रस से परिपूर्ण कविता पुस्तक मूल्य ॥)

हृदय हिलोर—नव रसों की विभिन्न विषयों पर लिखी हुई बहुत सी अति उत्तम कविताओं का संग्रह मूल्य १)

धर्म की आड़ में—विकलजी के साथ बीती हुई कई सत्य घटनायें ! जिन्हें पढ़ कर आपकी आँखें खुलेगीं मूल्य १)

वीर बालायें—राजपूत देवियों के अमर बलिदान की बड़ी ही सरस और सरल भाषा में सुन्दर कहानियाँ मूल्य १)

मुखफी—अवरंगजेब की पुत्री का त्याग (कविता) मूल्य ॥)

अमिताभ—म० गौतम बुद्ध के जीवन का एक चित्र मू० ॥)

व्यवस्थापक

श्री मां मन्दिर, मंडी धनौरा, मुरादाबाद